मूल्यपरक शिक्षा
एक विमर्श

पवन सिन्हा*

मूल्य आधारित शिक्षा की सोच समय की सबसे बड़ी आवश्यकताओं में से एक है। परंतु इसको प्रायोगिक रूप में ढालना उतना सरल नहीं है, जितना इसके विषय में बात करना। गत पाँच दशकों से इस विषय में लगातार बात तो हो रही है, परंतु मूल्य अंततोगत्वा पाठ्यक्रम का एक हिस्सा होकर ही रह गए हैं। मूल्यों को वैज्ञानिक रूप से परिभाषित करने की आवश्यकता है, जिससे इन्हें क्रियात्मक रूप दिया जा सके। मूल्य ऐसे सिद्धांत हैं जो पूरी तरह निश्चित हो ही नहीं सकते। कुछ आधारभूत सिद्धांतों को छोड़ दें तो अधिकतर मूल्य देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार बदलते हैं। ये परिभाषित करने की आवश्यकता है कि नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त विषयों में भी मूल्य आधारित शिक्षा कैसे कार्य करेगी। उदाहरण के लिए, विज्ञान और वित्त, प्रबंधन आदि की पढ़ाई में मूल्य कैसे समाविष्ट होंगे। 'मूल्य आधारित शिक्षा मूल्य पढ़ाने के लिए नहीं हो, बल्कि जीवन में मूल्य कैसे स्थापित हों, इसका प्रशिक्षण होना चाहिए।'

जीवन का हर क्षण एक नया अनुभव देता है और उद्घाटित करता है उन अनेक आयामों को जो अब तक हमारे जीवन में अनदेखे, अनछुए और अनचीते रह गए हैं। नए अनुभव सदैव अपने साथ नयी संभावानाओं को भी ले आते हैं। ये नयी संभावनाएँ हो सकती हैं — जीवन को पुनः परिभाषित करने की, जीवन की नयी परिभाषा के संदर्भ में समाज को पुनःपरिभाषित करने की, समाज के संदर्भ में शिक्षा को पुनःपरिभाषित करने की और शिक्षा की नयी परिभाषा के संदर्भ में पुनश्चः समाज को और फिर जीवन को पुनः परिभाषित करने की। समझ में नहीं आता कि यह चक्र बन कैसे जाता है? कैसे हम जीवन से शिक्षा तक पहुँचते हैं और फिर शिक्षा से जीवन तक पहुंच जाते हैं? जीवन, समाज और शिक्षा का यह ताना-बाना समझ से परे लगता है।

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली –110021

संभवत: बहुत कुछ ऐसा है जिसे अभी अनुभवों द्वारा उद्‌घाटित किया जाना है। इसका सीधा-सा निहितार्थ यह है कि अनुभवों को व्यर्थ ना समझा जाए और उनमें से अपने मतलब की, अपने काम की चीज़ अपने पास सहेजकर रख ली जाए। इन्हीं अनुभवों में से एक अनुभव याद आता है जो मुझे फिर से जीवन को समझने की ओर ढकेलता है। बात बहुत पुरानी तो नहीं है, लेकिन उतनी नयी भी नहीं है। मुझे एक बस्ती के बच्चों के साथ काम करने और उनके साथ खूब सारी बातचीत करने का मौका मिला। यह बस्ती जीवन की तरह ही 'क्षणभंगुर' है। कब खत्म हो जाए पता ही नहीं! यानी जो बस्ती आज है, हो सकता है कि वह कल वहाँ मिले ही नहीं। कभी भी बुलडोज़र चल सकता है और चला भी है। इन बच्चों के साथ अपने आस-पास की जगह को, बस्ती को साफ़ रखने और स्वयं साफ़ रहने के बारे में बात हो रही थी। यह बात हो रही थी कि किस-किस तरह से सफ़ाई का काम किया जा सकता है। इतने में एक बच्चा बोला कि हम तो साफ़ रह सकते हैं, अपनी बस्ती के आस-पास कूड़ा भी जमा नहीं होने देंगे, लेकिन यह बताइए कि उन लोगों का क्या करें जो हमारी बस्ती के पास ही कूड़ा डाल देते हैं। फिर एक बस्ती की 'नानी' जो पूरी बस्ती की नानी है — ने साहस बटोरकर कहा कि रोज़ उन कोठियों, बड़े-बड़े घरों की ओर से गाड़ियाँ भर-भर कर आती हैं और यहाँ कूड़ा डाल जाती हैं, जैसे हम 'कूड़ाघर' हों। क्या उन्हें यह सब करना चाहिए? क्या उनके लिए कोई सबक नहीं है? अब बताइए, इसका क्या समाधान है? वास्तव में, मेरे लिए यह सवाल बेहद जटिल था। मिल बैठकर सवाल का जवाब तो खोजा, लेकिन यह सवाल अपने साथ अनेक सवाल खड़ा करता चला गया। सवाल यह कि स्वच्छता, ईमानदारी, खुद जियो-औरों को भी जीने दो, किसी को नुकसान ना पहुँचाना आदि बातें सिर्फ़ किताबी बातें हैं या इनमें कोई दम भी है? जब इन सवालों की गहराई में जाते हैं तो पता चलता है कि पहले तो सब मिलकर ही रहते थे। उसका दुख मेरा दुख, उसकी भूख मेरी भूख, उसका घर मेरा घर, उसके बच्चे मेरे बच्चे, कहीं कोई भेदभाव ही नहीं। कोई अपना घर साफ़ करके अपने घर का कूड़ा किसी दूसरे के घर के पास कैसे फ़ेंक सकता है? उनके संस्कार, उनके मूल्य कहाँ चले गए? और कहाँ चली गई उनकी समझ जो अपने बच्चे को साफ़ हवा, साफ़ वातावरण देने के लिए दूसरों के बच्चों की ज़िंदगी को खतरे में डाल देते हैं! कहाँ गए उनके मूल्य और कहाँ गई मूल्यपरक शिक्षा? चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले 'मूल्य' की अवधारणा पर भी नज़र डाल लेते हैं।

'मूल्य' की अवधारणा को किसी एक बंधे-बंधाए और अनिवार्य रूप से सुनिश्चित चौखटे या सांचे में बाँधना, देखना और समझना न केवल अत्यंत कठिन है, बल्कि ऐसा करना स्वयं 'मूल्य' का अवमूल्यन होगा, उसके प्रति अन्याय होगा। वास्तव में, 'मूल्य' अनेक अर्थों में समझा और प्रयुक्त होता है। एक ओर यह 'मानक' या 'मानदंड' के रूप में प्रयुक्त होता है तो दूसरी ओर 'अभीष्ट' के अर्थ में भी देखा-समझा जाता है। 'मानक' या 'मानदंड' या 'अभीष्ट' के रूप में मूल्य व्यक्ति, समुदाय, समाज, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर किसी भी व्यवहार

या कार्य के बारे में टिप्पणी करने के आधार होते हैं। इतना ही नहीं ये वे कसौटी भी हैं जिन पर विभिन्न व्यवहारों और कार्यों का जायज़ा लिया जाता है — न केवल दूसरों के लिए बल्कि स्वयं अपने कार्य, निर्णय लेने की दिशा का भी जायज़ा लिया जाता है। इतना तो तय है कि मूल्य किसी भी संस्कृति का अभिन्न अंग होते हैं और संस्कृति किसी भी समाज का अभिन्न अंग होती है। इस रूप में मूल्य भी समाज के ताने-बाने में रचे-बसे होते हैं। मूल्यों को सामाजिक ताने-बाने से अलग करके न तो देखा जा सकता है और न ही देखने का 'दुस्साहस' किया जाना चाहिए। यह कहना भी कदाचित् गलत न होगा कि मूल्य सामाजिक अंतः संबंधों से उत्पन्न होते हैं। वे लोक व्यवहार से प्रकट होते हैं। मूल्यों के संबंध में एक रोचक तथ्य यह है कि वे 'परिप्रेक्ष्य' से जुड़े होते हैं। परिप्रेक्ष्यों की परिधि से आबद्ध मूल्य व्यक्ति को यह समझने में सहायता करते हैं कि किसी संदर्भ विशेष में क्या सही है और क्या गलत? क्या अच्छा है और क्या बुरा? क्या शुभ है और क्या अशुभ? इस अर्थ में मूल्य एक सापेक्ष संकल्पना है जो निरंतर सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है। जो कार्य किसी एक समाज विशेष में उचित है वही कार्य किसी दूसरे समाज विशेष में अनुचित भी हो सकता है। यह बिंदु भी विचारणीय है कि हम चीज़ों, घटनाओं अथवा कार्यों को किस दृष्टिकोण से देखते हैं। मूल्य की यही सीमा है कि वे परिप्रेक्ष्य से जुड़े होते हैं। अनेक बार मूल्य युग सापेक्ष भी होते हैं। जो मानदंड या अभीष्ट किसी एक युग के लिए सार्थक, प्रासंगिक है, वही किसी दूसरे युग के लिए निरर्थक या अप्रासंगिक हो सकता है, क्योंकि युग बदलता है, समय बदलता है, समाज बदलता है और समाज की आवश्यकताएँ एवं प्राथमिकताएँ भी बदलती हैं। यही कारण है कि बदलते समाज के परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की आवश्यकता और प्राथमिकता भी सुनिश्चित करनी होगी।

समाज की आवश्यकताओं को केंद्र में रखते हुए मूल्यों का सृजन भी किया जाता है और किया जाना चाहिए, क्योंकि मूल्यों की प्रकृति परिवर्तनशील है। परिवर्तन में ही जीवन होता है, इसलिए मूल्यों की जीवंतता का आधार भी यही परिवर्तनशीलता है। जब हम मूल्यों को अपरिवर्तनशील मानकर उन्हें किन्हीं अदृश्य बेड़ियों से जकड़ देते हैं तो वे सकारात्मक प्रभाव की बजाय नकारात्मक प्रभाव देने लगते हैं। सड़न और दुर्गंध ठहरे या रुके हुए पानी में ही आती है। फिर उससे वितृष्णा-सी होने लगती है और फिर उससे कहीं दूर जाने को मन करता है। यही स्थिति मूल्यों के साथ भी है। वे समय सापेक्ष न हों तो 'बोझ' लगते हैं और कई बार कोई सही निर्णय लेने में मदद नहीं करते, बल्कि कई बार गलत ही सिद्ध होते हैं। मूल्य रोज़मर्रा की ज़िंदगी में रोज़ बनते-टूटते हैं। उनके बनने-टूटने में ही सृजन है, सत्यता है और सार्थकता भी। आज़ादी से पूर्व 'स्वतंत्रता' स्वयं में सबसे बड़ा मूल्य था, लेकिन आज़ादी मिलने के उपरांत स्वतंत्रता को बनाए रखने में जो बातें काम आती हैं वहीं उस युग विशेष के मूल्य होंगे। यही कारण है कि भारतीय संविधान की उद्देशिका में न्याय, स्वतंत्रता, समता, और बंधुता का उल्लेख हुआ है। इन्हें राष्ट्रीय मूल्य कहा जा सकता है। लेकिन ये मूल्य ऐसे हैं जो

प्रत्येक युग, प्रत्येक समाज और प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्व रखते हैं। इस रूप में कुछ मूल्य शाश्वत भी होते हैं। इस चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'मूल्य' स्वयं में एक मूल्य है, यानी हम अपने जीवन में जिन चीज़ों को अधिक 'मूल्यवान' समझते हैं, उसी के आधार पर अपने आचार, विचार और व्यवहार को नियंत्रित और संचालित करते हैं।

इस संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि मूल्यों को वैज्ञानिक रूप से परिभाषित करने की भी आवश्यकता है, जिससे इसे क्रियात्मक रूप दिया जा सके। अन्य शब्दों में, मूल्य ऐसे सिद्धांत हैं जो पूरी तरह निश्चित हो ही नहीं सकते। कुछ आधारभूत सिद्धांतों को छोड़ दें तो अधिकतर मूल्य देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार बदलते हैं। हम सीधे-सीधे ऋषि-मुनियों के सूत्रों को उस रूप में लागू नहीं कर सकते जिस रूप में हम कथाओं में सुनते हैं और जिसका वर्णन मूल्यों की विवेचना में अक्सर सुना जाता है। यदि हम अपने युग की व्यवस्थाओं, समाज और विश्व को समझे बिना कोई आदर्श व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं तो यह एक बड़ी भूल ही सिद्ध होगी। ऐसा करने का प्रयास 'मूल्यों' को 'पाठ्यक्रम' में अधिक स्थान नहीं दे सकता। शायद यही कारण रहा कि निरंतर चिंताओं के बाद भी इस दिशा में सार्थक परिणाम नहीं निकले। ये परिभाषित करने की आवश्यकता है कि नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त विषयों में भी मूल्य आधारित शिक्षा कैसे कार्य करेगी। उदाहरण के लिए, विज्ञान और वित्त, प्रबंधन आदि की पढ़ाई में मूल्य कैसे समाविष्ट होंगे। 'मूल्य आधारित शिक्षा मूल्य पढ़ाने के लिए नहीं हो, बल्कि जीवन में मूल्य कैसे स्थापित हों, इसका प्रशिक्षण होना चाहिए।' यह एक कठिन कार्य है तथा तभी संभव हो सकता है जब नीतिगत निर्णय के उपरांत प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा इसका संपादन हो। इसके नीति-निर्धारण में धर्मगुरुओं, मनोवैज्ञानिकों तथा अनुभवी शिक्षकों के शोध व मंथन का समावेश हो। इसमें समय तो लगेगा। इस आधार पर एक नीति-पत्र विकसित कर विद्वानों के विचारार्थ रखा जाए और सहमति के उपरांत विद्यालयों व महाविद्यालयों की प्रबंधन समितियों, प्राचार्यों व शिक्षकों का गंभीर प्रशिक्षण हो तभी मूल्य आधारित शिक्षा का स्वप्न पूर्ण होगा।

चिंतन का आवश्यक पहलू यह भी है कि क्या मूल्य पढ़ाए जा सकते हैं? मेरे विचार से मूल्य केवल रोपने चाहिए। इसके लिए कक्षा नहीं, बल्कि विद्यालय का वातावरण चाहिए। इस वातावरण के लिए प्रथम उत्तरदायित्व है — शिक्षा विभाग पर, दूसरा उत्तरदायित्व है — विद्यालय प्रबंधन कमेटी पर, तीसरा उत्तरदायित्व है — प्राचार्य पर, चौथा उत्तरदायित्व है — शिक्षकों पर तथा पाँचवा उत्तरदायित्व है — अभिभावकों पर। वस्तुतः विद्यार्थियों पर तो इसका उत्तरदायित्व है ही नहीं, परंतु हम सारा दायित्व या तो उनके सिर रख देते हैं या शिक्षकों के सिर। अन्य समूह दायित्व निर्वहन से साफ़ बच निकलते हैं। मूल्य आधारित शिक्षा के प्रशिक्षण में शिक्षा विभाग, विद्यालय प्रबंधन कमेटी, प्राचार्य तथा अभिभावक भी सम्मिलित होने चाहिए, अन्यथा बच्चे मूल्यों के सिद्धांत और सामाजिक व्यावहारिकता में उलझ कर भ्रम का शिकार हो जाएँगे।

अंततः यदि शिक्षा और मूल्य के संबंधों का विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि शिक्षा स्वयं में एक 'मूल्य' है। इसका अर्थ है कि हम शिक्षा को अपेक्षाकृत मूल्य देते हैं या उसे मूल्यवान मानते हैं। यही शिक्षा का मूल्य है। शिक्षा का अधिकार लागू होने से शिक्षा का 'मूल्य' और भी बढ़ा है। दूसरी ओर कोई भी शिक्षा मूल्यविहीन हो ही नहीं सकती। यदि शिक्षा को सार्थक और बेहतर जीवन जीना मानें तो मूल्यों के बिना जीवन की प्राथमिकताएँ कैसे सुनिश्चित की जा सकेंगी? यदि शिक्षा को बेहतर जीवन जीने की कला सिखाने वाला माना जाए या बेहतर जीवन जीने की तैयारी मानें तो इस तैयारी में मूल्य ही सहायता करेंगे। इन दोनों ही रूपों में शिक्षा और मूल्य का अटूट संबंध है।

अब सवाल उठता है, मूल्यों की शिक्षा कैसे संभव हो? एक आम समझ तो यह कहती है कि मूल्य शिक्षा का एक अलग से पाठ्यक्रम या सिलेबस तैयार किया जाए। उसकी पाठ्यपुस्तकें बनाई जाएँ। मूल्यों की शिक्षा देने वाली शिक्षण-अधिगम सामग्री, जैसे — अच्छा बालक, अच्छी आदतों पर चार्ट भी बहुतायात में बिकने लगेंगे। अब पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें हैं तो परीक्षा तो होगी ही, लिहाज़ा मूल्य शिक्षा की परीक्षा भी ली जाए। सवाल यह भी उठता है, जब मूल्य ही समाज सापेक्ष हैं तो उन मूल्यों की शिक्षा के लिए समाज की अनदेखी या उपेक्षा की जा सकती है? कदापि नहीं! मूल्यों की शिक्षा के लिए सबसे उत्कृष्ट विद्यालय तो समाज ही है, जिसमें बच्चे रहते हैं, नित नया कुछ अवलोकन करते हैं, अवलोकन के आधार पर विश्लेषण करते हैं, तर्क करते हैं, करणीय और अकरणीय में अंतर समझते हैं, सामाजिक मर्यादाओं के अनुरूप व्यवहार करते हैं, इस संदर्भ में यक्ष प्रश्न है कि क्या हमारा समाज इस मूल्य शिक्षा के लिए तैयार है?

आपने-हमने अनेक बार यह सुना और गुना है कि मूल्य सिखाए नहीं जा सकते वे तो ग्रहण किए जाते हैं। इस आधार पर मूल्यों की शिक्षा का कोई औचित्य रह ही नहीं जाता। उसे बस वातावरण दीजिए, वह स्वयं ही सीख जाएगा, स्वयं ही मूल्यों को ग्रहण कर लेगा। बच्चों को यह वातावरण न केवल घर-परिवार, समाज में चाहिए, बल्कि यह मूल्योन्मुखी वातावरण उन्हें विद्यालय में भी चाहिए। तो थोड़ी-थोड़ी ज़िम्मेदारी बाँट लेते हैं। कुछ हम करें, कुछ तुम करो।

'हम' और 'तुम' की परिभाषा में सभी शामिल हैं — सरकार, राजनैतिक इच्छा, विद्यालयों के 'मालिक', शिक्षक, अभिभावक और स्वयं बच्चे भी। बच्चों को समानता, समता का मूल्य 'दिखाना' है तो समाज में वह 'समानता' और 'समता' 'दिखानी' होगी। बच्चे निरंतर यह देखते हैं कि समाज में असमानता बुरी तरह से व्याप्त है। कुछ व्यक्तियों के पास एक से अधिक कारें हैं तो कुछ कई मीलों पैदल चलने को मजबूर हैं। कुछ लोग बचा हुआ खाना फ़ेंकते हैं तो कुछ लोग उसी फ़ेंके हुए खाने को उठाकर खाने और 'पेट भरने' को अभिशप्त हैं। कुछ बच्चों के स्कूलों में सारी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वह किसी शानदार होटल से कम नज़र नहीं आता तो अनेक स्कूलों में पीने का पानी, शौचालय, खेल का मैदान आदि आधारभूत सुविधाएँ भी नहीं हैं।

खिड़कियों के टूटे काँच से ही सरकारी स्कूलों की पहचान हो जाती है। आर्थिक रूप से पिछड़े 25 प्रतिशत बच्चे इन प्राइवेट स्कूलों में आरक्षण के तहत क्यों पढ़ें, अधिकार के रूप में क्यों नहीं? क्यों नहीं हर बच्चे के घर में 'मील' की समुचित व्यवस्था है, क्यों उसे विद्यालय में 'मिड डे मील' से अपना पेट भरना पड़ता है? क्यों कोई भाषा सबके सिर पर चढ़ बैठती है और क्यों नहीं सभी भाषाएँ अपने अस्तित्व को प्राप्त कर पाती हैं? जब स्कूल ही समान नहीं हैं तो बच्चे समानता का मूल्य कैसे ग्रहण करेंगे? इससे तो उनके मन में मूल्य-द्वंद्व प्रारंभ हो जाएगा।

मूल्य आधारित शिक्षा के कुछ ऐसे भी व्यावहारिक पक्ष हैं, जिनकी अनदेखी से मूल्य आधारित शिक्षा के इस महान लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता, जैसे — क्रोध नहीं आना चाहिए। इसे पढ़ा भर देने से क्या होगा, जब तक इस बात का प्रशिक्षण न हो कि क्रोध को रोका कैसे जाएगा? राष्ट्र प्रेम करना चाहिए, पर क्यों और कैसे? यह सिखाना आवश्यक है। इस शिक्षा में उठते वैचारिक द्वंद्व के उत्तर भी धर्म कर्तव्यबद्ध तथा व्यावहारिकता के परिप्रेक्ष्य में देने होंगे, जैसे — विद्यार्थी पूछे कि यदि मेरे माता-पिता ही पर्यावरण के विरुद्ध काम करें तो मैं क्या करूँ, या मेरे पिता भ्रष्टाचार करें तो मैं क्या करूँ, आदि-आदि।

इसी संदर्भ में एक और सवाल उठता है कि मूल्य देने का कार्य कौन करेगा यानि शिक्षक कौन होगा? इस पर गहन चिंतन बहुत आवश्यक है। कोई भी शिक्षक मूल्यों की शिक्षा नहीं दे सकता। इसके लिए एक विशिष्ट चयन प्रक्रिया होनी चाहिए। मूल्यों का विकास करने के लिए शिक्षण की पद्धति (pedagogy) का विकास भी करना होगा। यह पद्धति सामूहिक भी होगी और व्यक्तिगत भी, सामाजिक भी होगी और आंतरिक भी। धर्म, साहित्य और इतिहास इसके विशिष्ट अंग होंगे। पर पढ़ने की विधि थोड़ा हटकर होगी। विद्यार्थी मस्तिष्क तत्व और मर्म को समझ सकें, ऐसी क्षमताओं का विकास करना होगा और कोई विद्यार्थी दिए जा रहे प्रशिक्षण को किस प्रकार समझ रहा है, इसका व्यावहारिक परीक्षण भी होते रहना आवश्यक है। इस प्रशिक्षण में ये बहुत आवश्यक है कि विद्यार्थी और अभिभावक इसे गंभीरता से लें और इसके लिए विद्यालयों में अभिभावकों से नियमित संवाद सत्र आवश्यक है।

यदि हम वास्तव में कुछ करना चाहते हैं तो सरकार को भी गंभीर होना होगा। उसकी स्वयं की नीतियों में पारदर्शिता हो। वह जो कहे उसे करके दिखाए। सरकार यह भी देखे कि उसके स्वयं की कार्य-प्रणाली में मूल्य हों। स्वयं सरकार की कार्यप्रणाली मूल्योन्मुखी हो। जो व्यक्ति विद्यालय खोल रहे हैं, उनमें भी मूल्यों का विकास हो। शिक्षकों को भी स्वयं में मूल्यों का विकास करने की आवश्यकता है। ऐसा न हो कि हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और। यह स्थिति बच्चों में द्वंद्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं देती। एक बार मूल्य द्वंद्व उत्पन्न हो गया तो उसे दूर करना कठिन हो जाता है। हमें यह भी देखना होगा कि शिक्षा से जुड़े हर क्षेत्र और हर व्यक्ति में मूल्यों का विकास हो। उसके स्वयं के व्यवहार में मूल्यों की झलक हो, तभी बच्चे उन मूल्यों का अवलोकन तथा विश्लेषण कर सकेंगे और उन्हें आत्मसात् कर सकेंगे।

विद्यालय में विषयों को पढ़ाते समय मूल्यपरक बिंदुओं की चर्चा की जा सकती है। सामान्यतः विद्यालय में शिक्षकों का सारा ध्यान केवल विषयों को पढ़ाने पर ही होता है। लगभग हर शिक्षक (और मात-पिता की भी) की यह अपेक्षा रहती है कि बच्चे विषयों की परीक्षा में अच्छे अंक लेकर आएँ। विद्यालयी शिक्षा केवल अंकों तक ही सीमित होकर रह जाती है। इस तरह शिक्षा को बेहतर जीवन जीने की कला या तैयारी के रूप में लेकर चलने के उद्देश्य धूमिल पड़ जाते हैं। फिर जब बच्चे अमर्यादित व्यवहार करते हैं, अपशब्दों का प्रयोग करते हैं, किन्हीं व्यसनों में फ़ंस जाते हैं, अशिष्टतापूर्ण तरीके से बात करते हैं तो अकसर यह सुनने को मिलता है कि स्कूल में यही सीखा है? स्कूल में यही सिखाया जाता है? स्कूल में यह नहीं सिखाया गया कि किस तरह से व्यवहार करना चाहिए? आदि। जब शिक्षकों और अभिभावकों का सारा ध्यान विषयों की पढ़ाई और अच्छे अंकों पर रहेगा तो यह स्थिति तो आएगी ही। हमने बच्चों को विज्ञान की जानकारी तो दे दी, लेकिन उस विज्ञान का सही तरीके से उपयोग कैसे करना है — यह सिखाया ही नहीं। हमने बच्चों को पर्यावरण अध्ययन विषय के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों की तो जानकारी दे दी, लेकिन अपने निजी जीवन में इन प्रदूषणों को कैसे कम या समाप्त कर सकते हैं—यह चर्चा कभी हुई ही नहीं। विद्यालय में की गई 'किताबी पढ़ाई' का निजी जीवन से कोई संबंध ही नहीं है। सामाजिक संबंधों पर पाठ तो पढ़ा दिए, लेकिन सामाजिक संबंधों को कैसे निभाया जाए, उन्हें कैसे बनाए रखा जाए, उनमें कैसे सम्मानजनक दूरी बनाकर रखी जाए — यह चर्चा तो कक्षा में कभी हुई ही नहीं, तो बच्चे क्या सीखेंगे? कौन-से मूल्यों का विकास कर पाएँगे? अतः यह ज़रूरी है कि प्रतिदिन बच्चों के साथ 30-40 मिनट केवल 'बातचीत' या 'संवाद' किया जाए। अब मसला यह भी है कि बात क्या की जाए? कोई भी समसामयिक मुद्दा या बच्चों के अनुभव, उनकी समस्याओं, उनके मानसिक द्वंद्व — बातचीत का विषय कुछ भी हो सकता है। बड़े दुख की बात है कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था में बच्चों को सिर्फ़ जवाब देना सिखाया जाता है। जवाब देना ही उनकी नियति मान लिया जाता है। लेकिन उनमें सवाल पूछने, सवाल खड़े करने का साहस और समझ नहीं है। वैसे मैं बताना चाहूँगा कि सवाल पूछने और सवाल खड़े करने में अंतर होता है। इन दोनों कामों में ही तर्क, विश्लेषण और गहरी समझ की आवश्यकता होती है। मेरा अनुभव यह भी कहता है कि हिंदुस्तान के बच्चों में अपनी बात को कहने का आत्मविश्वास नहीं है। वे अस्मिता के संकट के दौर से गुज़र रहे हैं। उन्हें यह समझ नहीं आता कि हम जो कर रहे हैं, वह सही है या गलत? अगर गलत है तो क्यों? अगर यह गलत है तो सही क्या है? हमारे ऐसा काम करने से किसी को क्या परेशानी हो सकती है, आदि। बच्चों को मूल्यों की वैज्ञानिकता को भी समझाने की आवश्यकता है।

विद्यालयों को बच्चों की संस्कार शिक्षा के लिए भी कार्य करना चाहिए। ये संस्कार ही हैं जो मूल्यों के रूप में विद्यमान हैं। ये किसी के भी व्यक्तित्व का आइना होते हैं। यदि बच्चों के साथ निरंतर संवाद का

आयोजन किया जाए तो बच्चों के साथ विभिन्न मुद्दों, उनकी समस्याओं और उनके 'सवालों' पर बातचीत की जा सकती है। बातचीत के सिलसिले में वे 'क्यों' पूछते हैं। यह 'क्यों' पूछना और तर्कपूर्ण जवाब मिलने पर वे स्वयं ही विश्लेषण करते हैं कि सही क्या है और गलत क्या है। सही और गलत की पहचान से वे अपने अनावश्यक क्रोध पर भी नियंत्रण करना सीख सकते हैं। वे अपनी कमज़ोरियों को भी स्वीकार करने का साहस प्रदर्शित कर सकते हैं और उन्हें दूर करने के तरीके पूछ सकते हैं। उन तरीकों को पूरी ईमानदारी से अपने जीवन में उतारने की कोशिश ही मूल्यों के प्रति पहला कदम है। यदि इस संवाद या बातचीत में बच्चों के साथ माता-पिता, शिक्षक और विद्यालय प्रबंधक भी शामिल हों तो बच्चों के मन को समझने का प्रयास किया जा सकता है। आमने-सामने अनेक व्यावहारिक समस्याओं पर बातचीत की जाती है ताकि अभिभावकों और शिक्षकों, आदि सभी को समस्याओं के मूल कारणों की जानकारी मिल जाए और सभी मिल-जुलकर उन्हें समाप्त कर सकें।

मैं बेबाकी से एक बात कहना चाहता हूँ कि बच्चों में मूल्य-प्रत्यारोपण में सबसे बड़ी बाधा 'हम' बड़े लोग ही हैं। 'हम' यानि अभिभावक, शिक्षक, विद्यालय प्रबंधन, शिक्षा विभाग, नीति निर्धारण करने वाले लोग आदि।

शिक्षा में मूल्यों के समावेश के लिए लिए ज़रूरी है कि समान समाज की स्थापना की जाए, सर्वोदय समाज की स्थापना की जाए, जिसकी कल्पना विनोबा जी ने की थी। इसके लिए समाज को तैयार करना होगा। इस बात को केंद्र में रखते हुए निम्न बिंदुओं पर गहन विचार और गंभीरता से क्रियान्वयन होना आवश्यक है —

- बच्चों को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित किया जाए जिससे उनका संरक्षण और उनकी योग्यताओं का संवर्धन सरलता के साथ किया जा सके। जो बच्चे अंततः राष्ट्र-निर्माण में सहयोग करेंगे उनके प्रति राष्ट्र की यह ज़िम्मेदारी है कि वह उन्हें धरोहर की भाँति सहेजकर रखे।
- भारतीय इतिहास और परंपराओं को समग्रता के साथ पढ़ाया जाए। इतिहास की जड़ों में पैठी जीवन की बारीकियों को समझना होगा। ये बारीकियाँ मानव को अतीत से सीखने और भविष्य की दिशा तय करने में मदद करती हैं।
- बच्चों के मस्तिष्क और व्यवहार का समुचित विकास संभव हो, इसके लिए सभी शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाए और यह प्रशिक्षण अनिवार्य हो।
- सबको समान शिक्षा मिले अर्थात् पूरे देश के बच्चों को एक ही पाठ्यक्रम मिले तथा विद्यार्थियों को मिलने वाली सुविधाएँ भी एक-सी हों। यदि देश में सामाजिक समानता चाहिए तो समान शिक्षा और शिक्षण प्रणाली लागू करनी ही होगी।
- संपूर्ण शिक्षा तंत्र सरकार द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जनता के साथ मिलकर चलाया जाए तथा पब्लिक स्कूल प्रणाली के नाम पर शिक्षा का निजीकरण और व्यावसायीकरण बंद हो।
- बच्चों को अन्य राज्यों की संस्कृति और भाषा की भी जानकारी दी जाए। इससे देश की

अखंडता को बल मिलेगा। यह हमारा दुर्भाग्य है कि देश के बच्चे अमरीका और इंग्लैंड के बारे में जितना जानते हैं, उतना उत्तर-पूर्व और लेह-लद्दाख के बारे में नहीं जानते।

- योग-ध्यान हर स्तर के पाठ्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए। किसी भी विद्यार्थी में मानसिक शांति, उच्च मानसिक क्षमताएँ, धैर्य एवं समानता का भाव उत्पन्न करने का इससे बेहतर साधन नहीं हो सकता।
- देश के सभी बच्चों के लिए छठी कक्षा से आठवीं कक्षा तक स्काउट, नौवीं कक्षा से कक्षा बारह तक एन.सी.सी. का प्रशिक्षण तथा उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय सेवा योजना का प्रशिक्षण अनिवार्य किया जाए और इसे सीधे रूप से पाठ्यक्रम से गंभीरतापूर्वक जोड़ा जाए। इससे सभी बच्चे राष्ट्र-गौरव, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, प्राथमिक चिकित्सा तथा किसी भी आपदा से निबटने की समझ एवं शक्ति प्राप्त करेंगे।
- शिक्षा में 'धर्म सापेक्षता' का सिद्धांत लागू होना चाहिए। इससे हर विद्यार्थी को हर धर्म को समझने का मौका मिलेगा, जिससे समाज में शांति और सहिष्णुता जैसे मूल्यों का विकास होगा। उसे प्रारंभ से ही किसी भी तरह के भेदभाव का विरोध करना सिखाना होगा, जिससे वह स्त्रियों, प्रत्येक जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र का सम्मान कर सके।
- संघ लोक सेवा आयोग की तर्ज़ पर एक ऐसी केंद्रीय संस्था बनाई जाए जो शिक्षा के क्षेत्र में जाने के इच्छुक लोगों की परीक्षा (लिखित और साक्षात्कार) लेकर प्रशिक्षण देकर फिर सर्टिफ़िकेशन करे। तभी कोई विद्यालय उन्हें शिक्षक के रूप में नियुक्त कर सकेगा। यह आयोग यह भी सुनिश्चित करे कि शिक्षक का शोषण न हो। यदि किसी विद्यालय में ऐसा शोषण पाया जाए तो तत्काल प्रभाव से उसकी मान्यता समाप्त कर दी जाए।
- विद्यालयी शिक्षा की ढाँचागत व्यवस्था को बदलना होगा जो सिर्फ़ विषयों की सूचनाओं पर आधारित है। वह न तो जीवन जीने का बेहतर सलीका देती है और न ही जीवन को राष्ट्र-निर्माण में लगाने की सही दिशा। आठवीं कक्षा तक का शिक्षण विषयपरक होने की बजाय जीवनपरक हो और उसके उपरांत से बाहरवीं कक्षा तक का शिक्षण जीवनपरक होने के साथ-साथ विषयपरक हो, जिससे वे आत्मनिर्भर होने की दिशा में कोई हुनर प्राप्त कर सकें। बारहवीं तक की शिक्षा निःशुल्क हो। बच्चों की शिक्षा का आधार वे कौशल या कुशलताएँ हों जिनके द्वारा वे जीवन की अनेक समस्याओं का सामना करने के योग्य बन सकें।
- भारतीय शिक्षा और शिक्षण-पद्धति की नींव में भारतीय कक्षाओं और भारतीय समाज में हुए शोधों का गहन चिंतन हो। इसके लिए बड़े पैमाने पर भारतीय ग्रंथों, भारतीय चिंतकों और भारतीय समाजों और उनके इतिहास के शोधपरक अध्ययन को बढ़ावा दिया जाए। पुस्तकालयों में उन सभी प्राचीन ग्रंथों का संरक्षण किया जाए जो भारतीय इतिहास, शिक्षा-पद्धति, संस्कृति

आदि को समझने में मदद करेंगे, इससे पहले कि वे विलुप्त हो जाएँ। अपनी जड़ों से कटकर न तो पेड़-पौधे जीवित रह सकते हैं और न ही हम, यानी राष्ट्र!

- विद्यालय प्रशासन को विद्यालय और समुदाय के बीच के संबंध को समझना होगा। इसके लिए यह ज़रूरी है कि वे समुदाय के साथ काम करने की आदत का विकास करें।
- बच्चों के मन तथा व्यवहार को समझने के लिए विशिष्ट विशेषज्ञों द्वारा प्रत्येक शिक्षक तथा माता-पिता को सघन प्रशिक्षण दिया जाए। परवरिश संबंधी प्रशिक्षण को शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को शासकीय कार्य, जैसे — जनगणना, पल्स पोलियो आदि कार्यक्रमों में शामिल न किया जाए, जिससे वे शैक्षिक कार्यों में यानी बच्चों को पढ़ाने के कार्यों में अपना पूर्ण योगदान दे सकें।
- प्रत्येक शिक्षक को विद्यालय में अतिरिक्त समय अवश्य दिया जाए, जहाँ वे बच्चों से बातचीत कर उनकी समस्याओं को हल कर सकें तथा अपना अध्ययन भी कर सकें।
- बच्चों के विकास की दृष्टि से शुरुआती वर्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। अतः यह ज़रूरी है कि सबसे अधिक ध्यान प्राथमिक शिक्षा पर दिया जाए। बच्चों के संपूर्ण विकास की नींव रखने वाले शिक्षक को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाए। उन्हें वेतनमान आदि भी अधिक दिया जाए। उच्च शिक्षा व्यावसायिक जीवन का निर्माण करती है, जबकि प्राथमिक शिक्षा जीवन का निर्माण करती है। यहीं से समस्त बुराइयों का भी प्रारंभ संभव है और समस्त गुण भी यहीं से प्रत्यारोपित किए जा सकते हैं।
- सभी विद्यालयों की कैंटीन में जंक फ़ूड और कार्बोनेट वाले शीतल पेय एकदम निषेध होने चाहिए। माननीय उच्च न्यायालय, दिल्ली के आदेश के बाद भी ऐसा नहीं हो पा रहा है। विद्यालयों की कैंटीन और बाज़ार में बिकने वाले अनेक प्रकार के फ़ास्ट फ़ूड में भी ऐसे विषैले तत्व हैं जो बच्चों और बड़ों के जीवन के लिए बेहद खतरनाक हैं। नूडल में एम.एस.जी. यानी मोनोसोडियम ग्लूटामेट होता है, जिसे स्वाद बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो बैटोसोयटोन से बनाया जाता है। यह एम.एस.जी. सेहत के लिए बेहद हानिकारक है। इस तरह के जंक फ़ूड पर न केवल स्कूलों की कैंटीन में बल्कि बाज़ारों में भी प्रतिबंध लगाया जाए। इसके अतिरिक्त कुछ टूथपेस्ट में भी कुछ ऐसे रासायनिक तत्व होते हैं जो कैंसर की संभावना को बढ़ाते हैं। दुग्ध उत्पादों में अनेक बार ऐसे तत्व होते हैं जो अनेक गंभीर रोगों को आमंत्रण देते हैं। इस पर रोक लगाने की आवश्यकता है।
- बच्चों के शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के स्वास्थ्य पर समान रूप से बल दिया जाए। भारत में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता नहीं के बराबर है। बच्चों में पनपते क्रोध, विद्रोह, ज़िद, विपरीत लिंगी के प्रति अत्यधिक रुचि

आदि मानसिक स्वास्थ्य के विषय हैं और इन व्यावहारिक बाधाओं को गंभीरता से लेना चाहिए। बच्चों और युवाओं का मन ही विकास या विनाश का आधार है और उस पर शिक्षण संस्थाओं एवं घर-परिवारों में कोई ठोस कार्य नहीं हो रहा।

अंततः यही कहा जा सकता है कि हमें शिक्षा-व्यवस्था को नए तरीके से सृजित करना होगा ताकि शिक्षा के मूल्य को बरकरार रखा जा सके और मूल्यों की शिक्षा भी दी जा सके। इन सबका एक तरीका तो तय है और वह है — संवाद और साथ ही ईमानदारी भरा प्रयास।